।। ओ३म्।।

वानप्रस्था गुलाबी देवी आर्या दिव्य स्मृति ग्रन्थमाला – भाग-५

प्रकृति

लेखक :

आचार्य दिलीप कुमार 'जिज्ञासु' व्याकरणाचार्य

(आचार्य-गुरुकुल हरिपुर, उड़ीसा)

संयोजक :

वानप्रस्थ सत्यनारायण आर्य

सुजानगढ़, कोलकाता, रायपुर, सिलीगुड़ी

(कुलपति-गुरुकुल हरिपुर, उड़ीसा)

सम्पादक :

आचार्य राहुलदेव शास्त्री व्याकरणाचार्य

(आर्य समाज बड़ाबाजार, कोलकाता)

इस पुस्तिका का विमोचन आचार्य सुखदेव जी 'आर्य तपस्वी', रोहिणी, नई दिल्ली के कर-कमलों द्वारा आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय, नर्मदापुरम्, होशंगाबाद के शताब्दी समारोह के शुभ अवसर पर कार्तिक शुक्ल दशमी वि. सं. २०६८ तदनुसार ५ नवम्बर २०११ को गुरुकुल के पवित्र स्थली में सम्पन्न हुआ।

।। ओ३म्।।

सम्पादकीय

प्रकृति अनादि तत्व है। यह नित्य पदार्थ एवं जड़ है। सृष्टि की रचना में तीन कारण हैं जो अनादि हैं। इसमें पहला मुख्य कारण "निमित्त कारण" परमात्मा है।, जो सृष्टि को बनाने, धारण व प्रलय करने आदि व्यवस्थाओं का नियंत्रक है। दूसरा कारण सृष्टि का प्रकृति है, इसे "उपादान कारण" कहते हैं। उपादान कारण के बिना कुछ नहीं बन सकता। उपादान कारण अवस्थाभेद से बनता बिगड़ता है और तीसरा "साधारण कारण" जीव है, जो परमेश्वर की सृष्टि के पदार्थों को लेकर नाना प्रकार के आविष्कार करता है। प्रजनन आदि में जीव साधारण निमित्त कारण है। इन तीन कारणों के बिना सृष्टि का कोई नियम नहीं बन सकता। जैसे घड़े के निर्माण में उपादान कारण मिट्‌टी, साधारण कारण चाक आदि एवं मुख्य निमित्त कारण कुम्हार है।

ईश्वर ने यह सृष्टि प्रकृति और परमाणुओं को व्यवस्थित करके बनायी है। एक सृष्टि की आयु ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष है। इतने वर्षों के बाद प्रलय होता है। प्रलय के बाद फिर सृष्टि बनती है। प्रलय की अवधि भी उतनी ही है, जितनी सृष्टि की। इसलिए सृष्टि के दिन को 'ब्रह्मदिन' और प्रलय के समय को 'ब्रह्मरात्रि' कहा गया है। परन्तु इतना वैज्ञानिक गणित और सत्य गणना हमारे पास होते हुए भी आज लोग यदा-कदा बिना समय के सृष्टि प्रलय की कल्पना करके अफवाह उड़ाते हैं। कोई कहता है २०१३ में प्रलय है, कोई कहता है २०६० में कुछ भी नहीं बचेगा–वगैरह-वगैरह एवं अफवाहों से व्यक्ति परेशान हो जाता है और सोचता है कि मेरी बची सम्पत्ति को मुझे भोग लेना चाहिए। इससे अराजकता, अव्यवस्था फैलकर समाज दूषित होता है। इस दूषित अफवाहों से बचने के लिए सभी मत सम्प्रदाय वालों को हठ, दुराग्रह को छोड़कर इस वैदिक मान्यता को समझना और मानना चाहिए, क्योंकि यही गणना पूर्णरूपेण वैज्ञानिक और

प्रमाणिक है। इसी के आधार पर हम पाँच हजार वर्ष पुरातन द्वापर युग के अन्त के महाभारत युद्ध को जानते हैं और ९ लाख वर्ष पुराना रामायण (इतिहास) भी हमारे पास उपलब्ध है।

दूसरी बात इसी प्रकृति से बने संसार के विषय में है जो अद्वैतवादी **'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीव ब्रह्मैवनापरः'** के उद्‌घोषक कहते हैं कि सब ब्रह्म ही ब्रह्म जीव और प्रकृति कुछ भी नहीं है। वे भी बड़े भारी भ्रम में हैं। नवीन वेदान्ती एवं तथाकथित सनातनी लोगों का हठ ही है जो जगत् को मिथ्या मायाजाल कहते हैं और इसकी वास्तविकता स्वीकार नहीं करते। महर्षि दयानन्द के जीवन का एक छोटा सा वृत्तांत है–कुम्भ के मेले में प्रचार के दौरान स्वामीजी बैठे हुए विचार कर रहे थे। इतने में ७-८ नवीन वेदान्ती सन्यासीगण हाथ में वेदान्त लेकर स्वामीजी के पास पहुँचे, स्वामीजी ने उठकर उनका आदर किया और उनको आसन प्रदान किया। कुछ देर के वार्तालाप में वे वेदान्ती सन्यासीगण कहने लगे ये जगत मिथ्या, मायाजाल मात्रा है और कुछ भी नहीं है। स्वामीजी ने पूछा, कहाँ लिखा है। वे कहने लगे इस पुस्तक में (अपने हाथ में रखी पुस्तक की ओर इशारा करके) लिखा है। दयानन्द ने कहा कि ये जगत झूठा है तो यह दिखाई देने वाले पदार्थ भी झूठे हैं, माया मात्र है। वे कहने लगे–हाँ। फिर दयानन्द ने कहा तब तो तुम्हारे हाथ में रखी ये किताब भी झूठी हुई, मैं इसका प्रमाण क्यों मानूँ?

गुरुकुल हरिपुर के आचार्य वैदिक विद्वान, व्याकरणपटु, मेधावी, नैष्ठिक ब्रह्मचारी, वैदिक संस्कृति के उपासक, मधुर भाषी, बहुआयामी व्यक्तित्व, सर्वगुण सम्पन्न, अहर्निशं विद्यार्थियों के निर्माण में संलग्न आचार्य दिलीप कुमारजी 'जिज्ञासु' ने इस 'प्रकृति' नामक लघु ग्रन्थ में तर्क, प्रमाण सहित प्रकृति के विषय में जिज्ञासुओं के मन में उठने वाले प्रश्नों का सुन्दर समाधार किया है। आपका जन्म छत्तीसगढ़ के महासमुन्द जिला अन्तर्गत ग्राम बसना सरायपाली में हुआ। जन्म से ही आर्य समाजी परिवार प्राप्त होने से आपकी शिक्षा-दीक्षा भी गुरुकुल में हुई। आपने ९वीं कक्षा से लेकर आचार्य तक गुरुकुल आमसेना में विधिवत् अध्ययन किया और शास्त्री

कक्षा में (म.द.वि. रोहतक) स्वर्ण पदक प्राप्त कर कीर्तिमान स्थापित किया। इसके पश्चात् आपने व्याकरणाचार्य में भी स्वर्ण पदक प्राप्त किया और दर्शनाचार्य में भी मेरिट लिस्ट में रहे। ये कीर्तिमान आपके मेधा बुद्धि के परिचायक हैं। इसके साथ ही आप कुशल वक्ता, अच्छे लेखक हैं। आपका संस्कृत पर भी अच्छा अधिकार है। आपने २४ वर्ष की छोटी अवस्था में ही नैष्ठिक ब्रह्मचर्य दीक्षा लेकर अपना सारा जीवन समाज को अर्पित कर दिया। पूज्य स्वामी धर्मानन्दजी की प्रेरणा एवं परम तपस्वी गोभक्त आचार्य बलदेवजी के पावन सान्निध्य में सन् २००२ में गुरुकुल आमसेना की पवित्र स्थली में आपने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा ग्रहण की। आप वर्तमान समय में डा. सुदर्शनजी आचार्य द्वारा स्थापित गुरुकुल हरिपुर के आचार्य पद का निर्वहन कर रहे हैं तथा आपके साथ ही आचार्य धर्मनराज़जी पुरुषार्थी गुरुकुल की व्यवस्था में महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। इस सम्पूर्ण आर्य जगत् को आपसे आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण विश्वास है कि आप अपने बल, विद्या, बुद्धि सामर्थ्य से इसके उन्नति में तत्पर रहेंगे। आपने इस लघु ग्रन्थ में प्रकृति के विषय में बहुत सुन्दर विचार, तर्क प्रमाण सहित प्रस्तुत किये हैं। यह निश्चित रूपेण जिज्ञासुओं को 'प्रकृति' के स्वरूप से अवगत करायेगा। इसके साथ ही अनेक गुरुकुलों एवं संस्थाओं के संरक्षक, ट्रस्टी, कुलपिता, दानवीर, प्रेरक पुरुष वानप्रस्थ सत्यनारायण आर्य जी ने वेद प्रचारार्थ गुरुकुल होशंगाबाद की शताब्दी समारोह पर अपनी धर्मपत्नी की पुण्य स्मृति में वानप्रस्थ गुलाबी देवी आर्या दिव्य स्मृति ग्रन्थमाला प्रकाशित कर अति उत्तम कार्य किया है। एतदर्थ इनको भी साधुवाद।

अन्त में इस महायज्ञ में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से अपना सहयोग, आशीर्वाद एवं परामर्श प्रदान करने वाले सभी महानुभावों का मैं हृदय से धन्यवाद एवं आभार व्यक्त करता हूँ। इसी श्रद्धा और विश्वास के साथ–

विदुषामनुचरः

आचार्य राहुलदेव शास्त्री

(आर्य समाज बड़ाबाजार, कोलकाता)

भूमिका

यह जो सूर्य, चन्द्र आदि कार्य जगत् दिखाई दे रहा है, इनकी उत्पत्ति कभी न कभी हुई है। इनकी उत्पत्ति को जो मूल उपादान कारण है, उसको वैदिक दर्शनों में प्रकृति कहते है। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीन अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व हैं, नेत्र के द्वारा अदृश्य हैं। इनकी साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। मूल प्रकृति से सर्वप्रथम महत्तत्व नामक सूक्ष्म तत्त्व उत्पन्न होता है, उससे अहंकार नामक सूक्ष्म तत्त्व उत्पन्न होता है। अहंकार से पांच ज्ञानेन्द्रियां, पाँच कर्मेन्द्रियां, मन और पांच तन्मात्रायें ये सोलह तत्त्व उत्पन्न होते हैं। उन सूक्ष्म पांच तन्मात्राओं से पृथ्वी आदि पांच स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं, उन्हीं स्थूलभूतों से मनुष्य आदि प्राणियों के शरीर की उत्पत्ति होती है तथा पेड़, पौधे, वृक्ष, वनस्पति ये भी पंच भूतों से ही उत्पन्न होते हैं।

वैदिक दर्शनों में प्रकृति को प्राकृतिक पदार्थों में सबसे सूक्ष्मकरण माना गया है। इससे सूक्ष्मकरण और कोई भी नहीं है। यदि इससे भी सूक्ष्मकण हो, तो अनवस्था दोष उत्पन्न हो जायेगा। अतः अनवस्था दोष से बचने के लिये ऐसा तत्त्व स्वीकार करना पड़ेगा जो कि सबसे सूक्ष्म हो, जिसकी उत्पत्ति कभी न कभी होती हो तथा जिसका कारण कोई भी न हो। इस प्रकार का तत्त्व वैदिक दर्शनों में मूल प्रकृति को ही स्वीकार किया गया है। यह जो सूर्य, चन्द्र आदि कार्य जगत् दिखाई दे रहा है, इससे पहले सत्तात्मक कारण कोई भी नहीं था, शून्य रूप में था, ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि अभाव से भाव नहीं होता। शून्य से किसी भी सत्तात्मक वस्तु की उत्पत्ति वैदिक दर्शनों में स्वीकार नहीं की जाती। यदि कार्य जगत् सत्तात्मक है, तो उसका मूल उपादान कारण भी सत्तात्मक ही होना चाहिये। शून्यवाद का खण्डन हो जाने से, यह बात सिद्ध हो जाती है कि जगत् की उत्पत्ति से पूर्व कुछ अति सूक्ष्म कण थे। जो कि अतीन्द्रिय होते हैं। उन्हीं से जगत् की उत्पत्ति होती है। जो तत्त्व अतीन्द्रिय हो, उसको वैदिक दर्शनों में शून्यरूप में नहीं माना जाता। बहुत सारे सूक्ष्म तत्त्व ऐसे होते हैं, जो कि

सत्तात्मक होने पर भी बाह्य इन्द्रियों से ग्राह्य नहीं होते। मूल प्रकृति भी अतिसूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य नहीं है। परन्तु अतीन्द्रिय होने के कारण प्रकृति को अभाव रूप में नहीं कहा जा सकता, बल्कि प्रकृति के असंख्य सूक्ष्मकण हैं और सत्तात्मक हैं। मूल प्रकृति अनादि है, कार्य जगत् कभी उत्पन्न होता है, कभी नष्ट होता है, परन्तु मूल प्रकृति सदा एक रूप में विद्यमान रहती है। उसमें कोई परिवर्त्तन नहीं होता है। प्रकृति भी एक नित्य तत्त्व है, लेकिन इसमें परिणाम होने के कारण प्रकृति को परिणामी नित्य कहते हैं और आत्मा-परमात्मा को कूटस्थ नित्य कहते हैं। जिसमें परिवर्तन होने पर भी अपने मूल रूप को नहीं छोड़ता वह परिणामी नित्य कहलाता है।

प्रकृति में परिणाम होता है, उससे जगत् की उत्पत्ति होती है, परन्तु मूल रूप को न छोड़ने के कारण प्रकृति परिणामी नित्य है। परन्तु आत्मा-परमात्मा ऐसे तत्त्व हैं, जिनमें कभी भी विकार होता ही नहीं है। ये दोनों किसी के उपादान कारण नहीं बनते। इसलिये आत्मा-परमात्मा कूटस्थ नित्य कहलाते हैं। अन्तिम निष्कर्ष यही निकलता है कि ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीनों अनादि तत्त्व हैं, न कभी उत्पन्न होते हैं, न कभी नष्ट होते हैं। इसमें अंश-अंशी भाव भी नहीं है। ये तीनों पृथक् अस्तित्व वाले हैं।

इस पुस्तिका का प्रकाशन गुरुकुल हरिपुर के कुलपति, प्रसिद्ध दानवीर, प्रेरक पुरुष, प्रखर समाजसेवी आदरणीय वानप्रस्थ सत्यनारायण जी आर्य के उद्योग एवं सफल प्रयास से पूर्ण हुआ। अतः इनका विशेष आभार, साथ में ही आचार्य राहुलदेव जी ने भी इस विस्तृत श्रृंखला का सम्पादन कार्य किया, उनकी भी साधुवाद। यह पुस्तक हमारी अपेक्षाओं पर खरी उतरेगी तो हमारा लिखना सार्थक होगा।

आचार्य दिलीप कुमार 'जिज्ञासु'
(आचार्य–गुरुकुल हरिपुर)

प्रकृति

न्याय दर्शन में प्रकृति की सत्ता को स्पष्ट करते हुये कहा गया है–किसी मिट्टी के पिण्ड को यदि तोड़ते-तोड़ते जायें तो उसका विनाश नहीं होगा, सर्वथा अभाव नहीं होगा। बल्कि सूक्ष्म परमाणु शेष रह जायेंगे। परमाणु की परिभाषा बताते हुये महर्षि वात्स्यायन जी ने इसी सूत्र के भाष्य में कहा है-किसी ढेले को तोड़ते-तोड़ते जायें तो एक स्थिति आ जाती है कि जिसका आगे विभाग न हो, जिससे छोटा और कुछ न हो उसको परमाणु कहते हैं। न्याय ४/२/१६, वात्स्यायन भाष्य। जो त्रसरेणु से भी ज्यादा सूक्ष्म हो उसको परमाणु कहते हैं। त्रसरेणु से सूक्ष्म द्वयणुक, द्वयणुक से सूक्ष्म अणु और अणु से सूक्ष्म परमाणु होता है। अर्थात् जो सबसे सूक्ष्म कण हो, निरवयव हो, उसी को परमाणु कहते हैं। न्याय, ४/२/१७।

वैशेषिक दर्शन में भी प्रकृति की सत्ता को सिद्ध करते हुये कहा गया है-**सदकारणवन्नित्यम्।** वैशेषिक ४/१/१। अर्थात् इस सूत्र के अन्दर नित्य तत्त्व की परिभाषा बताई गई है। जो तत्त्व सत्तत्मक हो तथा जिसके समवायीकारण, असमवायीकारण और निमित्त कारण ये तीन कारण न हों अर्थात् जो कभी उत्पन्न नहीं होता, वह नित्य कहलाता है। वैशेषिक शास्त्र के अन्दर परमाणु को नित्य माना गया है, जो कि सबसे सूक्ष्म कण है, उससे ही सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति होती है। सूक्ष्म परमाणु जिसे नित्य कहा जाता है, उसकी सत्ता हे, इसकी जानकारी कार्य पदार्थों से होती है। जैसे कि कपड़े को देखकर तन्तु का अनुमान करते हैं, वैसे ही सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि पदार्थों को देखकर पता लगता है कि इनका सूक्ष्म कारण अवश्य होगा, क्योंकि काण के बिना किसी वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती है, यदि ये कार्य पदार्थ उत्पन्न हुये हैं, तो इनका कोई न कोई उपादान कारण होगा। कारण के होने पर ही कार्य की उत्पत्ति देखी जाती है, यदि आटा है तो रोटी बन सकती है। आटा के न होने पर रोटी नहीं बन सकती है। उसी प्रकार से यदि सूक्ष्म परमाणु है तो उनसे बड़े-बड़े सूर्य, चन्द्र आदि पदार्थ उत्पन्न हो सकते

हैं। अतः सूक्ष्म परमाणुओं की सत्ता स्वीकार करनी चाहिये। अविद्या का तात्पर्य होता है मिथ्याज्ञान। मिथ्याज्ञान कहने से यह बात स्पष्ट होती है कि कहीं-कहीं सत्यज्ञान भी है। विद्या से ही नञ समास करने पर अविद्या शब्द बनता है। यदि विद्या ही नहीं है तो अविद्या की सम्भावना नहीं कर सकते। अर्थात् अविद्या शब्द बोलने पर विद्या शब्द की सिद्धि स्वयं ही हो जाती है। उसी प्रकार से अनित्य शब्द सुना जाता है, तथा अनित्य पदार्थ भी देखे जाते हैं। अनित्य शब्द से ही पता लगता है कि कहीं न कहीं कोई न कोई नित्य पदार्थ भी होगा। वैशेषिक ४/१/४-५। अर्थात् घट-पट शरीर आदि प्रतिदिन नष्ट होते हुये दिखाई देते हैं, इसका मतलब ये सब अनित्य हैं। इन अनित्य पदार्थों से पता लगता है कि कोई ऐसा पदार्थ भी होगा जो कभी भी नष्ट नहीं होता। वैशेषिक शास्त्र के अनुसार परमाणु ही वह सूक्ष्म पदार्थ है जो कि नित्य है, और सब जगत् का कारण है। ये ही सूक्ष्म पदार्थ आपस में मिल जायें तो सूर्य, चन्द्र आदि पदार्थों की रचना हो जाती है। सांख्य और योग शास्त्र में जगत् का मूल कारण प्रकृति को माना गया है तथा न्याय और वैशेषिक में जगत् के मूल कारण परमाणु को माना गया है। संज्ञा से भिन्नता है, लेकिन मूल उपादान को सभी शास्त्र स्वीकार करते हैं। अतः जगत् की उत्पत्ति अभाव से नहीं हुई है। सत्तात्मक तत्तव सूक्ष्म परमाणुओं से जगत् की उत्पत्ति हुई है।

सूक्ष्म परमाणु आंख के द्वारा दिखाई नहीं देते, अतीन्द्रिय होते हैं, अणु परिमाण वाले होते हैं। जब वे ही सूक्ष्म परमाणु आपस में मिलते चले जायें तो अणु, द्वयणुक, त्रसरेणु आदि क्रम से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि जगत् की रचना करने वाले सूक्ष्म परमाणुओं की सत्ता है। अतीन्द्रिय होने के कारण उनकी सत्ता का खण्डन नहीं किया जा सकता। वैशेषिक ४/१/६।

अब सांख्य दर्शन में प्रोक्त प्रकृति तत्त्व पर विचार करते हैं। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। जब तीनों गुण

समान स्थिति में हों, विषमता न हों इनमें से कोई भी प्रधान और गौण रूप में न हों, यह सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व की अवस्था है। इसको प्रकृति कहते हैं। प्रकृति से सर्वप्रथम महत्तत्त्व नामक सूक्ष्मकतत्त्व उत्पन्न होता है। महत्तत्त्व से अहंकार की उत्पत्ति होती है। अहंकार से पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, मन और तन्मात्रा इन सोलह तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। तथा पांच तन्मात्राओं से पृथ्वी आदि पंच स्थूलभूतों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार से प्रकृति और प्रकृति के विकार मिलकर चौबीस संख्या वाले हो जाते हैं। पुरुष प्रकृति से बिल्कुल भिन्न तत्त्व है। सांख्य १/६१। इस प्रकार से ये पच्चीस तत्त्व सांख्यदर्शन के प्रतिपाद्य विषय हैं। उस महत्तत्त्व से पूर्व प्रकृति नामक तत्त्व है, जो कि महत्तत्त्व को उत्पन्न करता है। उस प्रकृति का अनुमान करना चाहिये। मूलप्रकृति तथा प्रकृति से उत्पन्न घट-घट आदि पदार्थ संघात कहे जाते हैं, और ये संघात दूसरों के उपयोग के लिये होते हैं। उन पदार्थों के आधार पर पुरुष का अनुमान करना चाहिये, क्योंकि यदि ये संघात पदार्थ हैं, तो इनका उपयोग करने वाला भी कोई न कोई होना चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि जगत् की रचना करने वाले सूक्ष्म परमाणुओं की सत्ता है। अतीन्द्रिय होने के कारण उनकी सत्ता का खण्डन नहीं किया जा सकता। वैशेषिक ४/१/६।

मूल प्रकृति का कोई कारण नहीं होता। वह सम्पूर्ण जगत् का कारण है, लेकिन उसका कारण कोई भी नहीं है। इसलिये मूल प्रकृति को कारण से रहित कहा जाता है। यदि कोई मूल प्रकृति के कारण की गवेषणा करे तो उसकी गवेषणा कभी भी समाप्त नहीं होगी। एक कारण मिल जाने पर पुनः जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है कि उसका कारण क्या होगा? इस प्रकार से अन्तिम कारण की खोज में अनवस्था दोष उत्पन्न हो जाता है। इस अनवस्था दोष से बचने के लिये मूल प्रकृति को सांख्य शास्त्र में अन्तिम कारण माना गया है, वह कारण से रहित है। यदि कोई व्यक्ति प्रकृति के स्थान पर अन्य कोई और नाम रख दे तो उससे कोई आपत्ति वाली बात नहीं है। नाम भले ही भिन्न होगा परन्तु वह अन्तिम सूक्ष्म कारण होगा तथा

उससे और अन्तिम कारण नहीं होगा। उसका कोई कारण नहीं होगा।

सांख्य १/६८। इससे सिद्ध होता है कि प्रकृति ही सबसे अन्तिम कारण है। यह बात तर्क और युक्ति से सिद्ध हो जाती है। मूल प्रकृति से सबसे पहले महत्तत्व नामक सूक्ष्मतत्त्व की उत्पत्ति होती है। जो प्रकृति का आदि कार्य है। सांख्य १/७१। महत्तत्व के पश्चात् अहंकार नामक सूक्ष्मतत्त्व की उत्पत्ति होती है। सांख्य १/७२। अहंकार से पांच ज्ञानेन्द्रियां पांच कर्मेन्द्रियां, मन और पांच तन्मात्र इन सोलह तत्त्वों की उत्पत्ति होती है, जो कि अहंकार के कार्य होते हैं। सांख्य १/७३। सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति से पूर्व प्रकृति और पुरुष दोनों ही विद्यमान थे, लेकिन पुरुष जगत् का उपादान कारण नहीं बन सकता था, प्रकृति ही जगत् का उपादान कारण बनने की योग्यता रखती थी, इसलिये जगत् का उपादान कारण प्रकृति ही बन सकती है। सांख्य १/७५। किसी पृथिवी के एक टुकड़े को तोड़ते जाने पर जो अन्तिम कण बचता है, उसे अणु कहते हैं। वह अणु सम्पूर्ण जगत् का उपादान कारण नही बन सकता, क्योंकि एकदेशी अणु सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने की क्षमता नहीं रखता है। इसलिये मूल प्रकृति ही सम्पूर्ण जगत् का उपादान कारण बन सकती है, इसलिये प्रकृति नामक तत्त्व की जरूरत है। सांख्य १/७६। प्रकृति जगत् का उपादान कारण है, यह बात वेद के प्रमाण से भी सिद्ध हो जाती है। सांख्य १/७७। जैसा कि ऋग्वेद में कहा गया है–सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व बिल्कुल घोर अंधेरा था, कोई चिह्न दिखाई नहीं दे रहा था, सारा ब्रह्माण्ड सूक्ष्म कणों में विलीन था, पश्चात् उस सूक्ष्म प्रकृति से सर्वप्रथम महत्तत्व नामक सूक्ष्म तत्त्व की उत्पत्ति हुई। ऋग १०/१२९/३। उसी प्रकार ऋग्वेद में अन्यत्र भी लिखा है-यह सृष्टि उस सूक्ष्म प्रकृति से उत्पन्न हुई ऋग १०/१२९/७। उसी प्रकार से बृहदारण्यक में कहा गया है–सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व यह जगत् अप्रकट रूप में था, पश्चात यह सारा जगत नाम और रूप के द्वारा प्रकट हुआ। बृह १/४-७। उसी प्रकार से श्वेताश्वतर में भी कहा गया है–सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण वाली जन्म न लेने वाली एक प्रकृति अपने सदृश बहुत से प्रजाओं को उत्पन्न

करती है। श्वेता ४/५। इन सभी प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है कि सम्पूर्ण जगत् का उपादान कारण प्रकृति ही है। अतः प्रकृति की सत्ता प्रत्येक के द्वारा स्वीकार करना चाहिये। यदि कोई ऐसा कहे कि प्रकृति दिखाई नहीं देती है, इसलिये जगत् की उत्पत्ति अभाव से होती है। अर्थात् शून्य की उत्पत्ति होती है, तो ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि अभाव से किसी सत्तात्मक वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती है। यह सारा जगत् सत्तात्मक रूप में प्रत्यक्षादि प्रमाणों से उत्पन्न हो रहा है। इसलिये इसके उपादान कारणभी सत्तात्मक होना चाहिये, अभाव रूप नहीं। सांख्य १/७८। यह जगत् प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा उपलब्ध हो रहा है। इसका खण्डन नहीं किया जा सकता। जिस पकार से पीलिया रोग वाले व्यक्ति की आंख से सफेद शंख भी पीला दिखाई देता है, उसी प्रकार से यह जगत् भी नहीं है, लेकिन सत्तात्मक रूप में उपलब्ध हो रहा हो, ऐसी बात नहीं है, बल्कि यह जगत् सत्तात्मक है, इसलिये सत्तात्मक रूप से उपलब्ध हो रहा है।

यदि यह जगत् सत्तात्मक है, तो इसका उपादान कारण भी सत्तात्मक होना चाहिये, क्योंकि अभाव से किसी वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती है। सांख्य १/७९। इससे सिद्ध होता है कि प्रकृति सूक्ष्म होते हुये भी सत्तात्मक रूप से विद्यमान है। यदि उपादान कारण सत्तात्मक हो तो उस सत्तात्मक कारण से सत्तात्मक वस्तु की उत्पत्ति होगी और यदि कारण ही सत्तात्मक नहीं है तो कार्य की उत्पत्ति कहां से होगी/ यह जगत तो प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा सत्तात्मक रूप में हर मनुष्य उपलब्ध करता है, फिर इसका उपादान कारण भी सत्तात्मक होना चाहिये। सांख्य १/८०। जिसे सांख्य शास्त्र में प्रकृति कहते हैं। यदि कोई ऐसी शंका करे कि जगत की उत्पत्ति के लिये प्रकृति की क्या जरूरत है? कर्म से ही जगत् की उत्पत्ति हो जायेगी, कर्म को ही उपादान कारण मान लेंगे, तो ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि कर्म द्रव्य के आधार से रहता है। वह कभी स्वतन्त्र नहीं रहता। जिसकी स्वयं की स्वतंत्र सत्ता नहीं है, वह किसी का उपादान कारण कैसे बन सकता है? इससे सिद्ध होता है कि मूल प्रकृति ही जगत् का उपादान कारण है। कर्म

जगत का मूल उपादान कारण नहीं है। सांख्य १/८१। प्रकृति और पुरुष के सत्तात्मक होने पर भी चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा उनकी उपलब्धि क्यों नहीं होती? इस शंका का समाधान करते हुये प्रकृति और पुरुष अथवा कोई भी सूक्ष्म वस्तु की अनुपलब्धि में क्या-क्या कारण है? वे कारण वर्तमान सूत्र के द्वारा प्रस्तुत किये जा रहे हैं–

क– अतिदूरात् : बहुत दूर होने के कारण भी कुछ पदार्थ दिखाई नहीं देते। जैसे कि अतिदूरस्थ मनुष्य, पशु, पक्षी दिखाई नहीं देते हैं।

ख– अतिसामीप्यात् : जो वस्तु अत्यन्त समीप है, वह भी दिखाई नहीं देती। जैसे कि–आंख की पुतली अत्यन्त समीप होने के कारण हमको दिखाई नहीं देती।

ग– इन्द्रियघातात् : इन्द्रियों में विकार हो जाने से भी वस्तु की उपलब्धि नहीं हो पाती। जैसे कि अंधे व्यक्ति के समक्ष उपस्थित आंवला दिखाई नहीं देता।

घ– मनोऽनवस्थानात् : मन के अस्थिर होने के कारण भी वस्तुओं की उपलब्धि नहीं हो पाती है। जैसे कि सड़क के समीप घड़ी बनाने वाला व्यक्ति बहुत बड़ी भीड़ को नहीं देख पाता है, क्योंकि उसका मन किसी और काम में लगा हुआ था।

ङ– सौक्ष्म्यात् : अतिसूक्ष्म होने के कारण भी अनेक पदार्थों की उपलब्धि नहीं हो पाती है। जैसे कि गर्मी के दिनों में प्रकोष्ट के अन्दर अग्नि के सूक्ष्म कण विद्यमान होते हैं, लेकिन दिखाई नहीं देते।

च– व्यवधानात् : किसी व्यवधान के कारण भी अनेक वस्तुओं की उपलब्धि नहीं हो पाती। जैसे कि पृथ्वी के अन्दर रहने वाला खनिज पदार्थ दिखाई नहीं देता।

छ– अभिभावत् : अभिभव हो जाने के कारण भी अनेक पदार्थों की उपलब्धि नहीं हो पाती है। जैसे कि मध्याह्न के अन्दर उल्का पात होता

रहता है, लेकिन सूर्य के प्रकाश से उल्का का प्रकाश अविभूत हो जाता है। इसलिये दिखाई नहीं देता है।

ज– समानाभिहाराच्च : अर्थात्-समान वस्तुओं में कुछ और समान रूप रंग वाले वस्तु मिला दिये जाये तो बाद वाले पदार्थ कौन से यह पता नहीं लगता। जैसे कि एक किलो सरसों मे एक किलो सरसों और मिला दिये जाये तो बाद वाले सरसों कौन से हैं, यह पता नहीं लगता, क्योंकि सबका रूप, रंग, आकार, प्रकार एक ही है। किसी भी उपलब्ध वस्तु की अनुपलब्धि में ये आठ कारण हैं। सांख्य १/१०८। इनमें से प्रकृति पुरुष के अनुपलब्धि में एक ही कारण है, वह कारण अगले सूत्र में बताया जा रहा है। प्रकृति और पुरुष ये दोनों अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व है, इसलिये चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा इनकी उपलब्धि नहीं हो पाती है। पदार्थो की अनुपलब्धि मे तो अनेक कारण हैं लेकिन प्रकृति और पुरुष के अनुपलब्धि में केवल एक ही कारण है, अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण प्रकृति और पुरुष विद्यमान होते हुये भी बाह्य प्रत्यक्ष के द्वारा उपलब्ध नहीं हो पाते। सांख्य १/१०९। बाह्य प्रत्यक्ष से प्रकृति और पुरुष की उपलब्धि नहीं हो रही है, तो ऐसा नहीं समझना चाहिये कि प्रकृति और पुरुष की सत्ता ही नहीं है। कार्य जगत् को देखकर उसके कारणों का अनुमान करना चाहिये। जैसे कि घड़े को देखकर मिट्टी का अनुमान होता है। उसी प्रकार से सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि को देखकर उसका सूक्ष्म कारण कोई न कोई होगा, यह अनुमान होगा। और वह सूक्ष्म कारण प्रकृति है ऐसा समझना चाहिये। उसी प्रकार से घट-पट, सूर्य, चन्द्र आदि पदार्थ हैं, तो उनका कोई न कोई उपभोक्ता होना चाहिये। इस युक्ति के द्वारा जीवात्मा का अनुमान हो जाता है और उस सूर्य आदि को बनाने वाला भी कोई होना चाहिये। इससे ब्रह्म का अनुमान हो जाता है। अर्थात् अनुमान प्रमाण के द्वारा ईश्वर जीव और प्रकृति तीनों को जान सकते हैं। सांख्य १/११०। इस से ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों की सत्ता स्पष्ट होती है। कार्य पदार्थ को देखकर कारण का अनुमान करते हैं। लेकिन जो कार्य जगतृ दिखाई दे रहा है, उसका सर्वथा विनाश कभी नहीं

होता। वह छोटे-छोटे कणों में विद्यमान रहता है, जिसे प्रलयावस्था कहते हैं। अर्थात् कार्य जगत् का सर्वथा विनाश कभी नहीं होता। सूक्ष्म रूप में परिवर्तित हो जाना ही विनाश है। और वही सूक्ष्म कण बाद में स्थूल रूप होकर जगत की उत्पत्ति करते हैं, इसलिये यह कहना कि जगत की उत्पत्ति शून्य से हुई है, उतना ठीक नहीं है। बल्कि यह कहना चाहिये कि जगत् की उत्पत्ति सूक्ष्म तत्त्वों से हुई है। उन सूक्ष्म तत्त्वों का नाम प्रकृति है। सांख्य १/११२। जो पदार्थ उत्पन्न होता है, वह उत्पत्ति से पूर्व सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहता है। जैसे कि घड़ा उत्पत्ति से पूर्व मिट्टी रूप में विद्यमान था, जो पदार्थ उत्पन्न हुआ है, इसका तात्पर्य है कि वह पहले विद्यमान था। जिस वस्तु की सत्ता नहीं है, उसकी उत्पत्ति भी नहीं होती है। यदि कार्य जगत् उत्पन्न हुआ है तो वह उत्पत्ति से पूर्व सूक्ष्मरूप में विद्यमान था। उसी को प्रकृति कहते हैं।

उसी प्रकार से अनुमान प्रमाण के द्वारा भी प्रकृति की सत्ता जानी जाती है। जैसे कि संसार के जितने भी घट आदि पदार्थ है वे सब त्रिगुणात्मक हैं। इससे सिद्ध होता है कि कारण को भी त्रिगुणात्मक होना चाहिये। इस अनुमान प्रमाण के द्वार सतोगुण, रजोगुण तमोगुण रूपक प्रकृति का अनुमान होता है। उसी प्रकार से प्रकृति की सिद्धि में शब्द प्रमाण भी उपलब्ध हो जाता है। जैसे कि ऋग्वेद में कहा गया है–सृष्टि के आदि में यह प्रकृति बहुत सूक्ष्म थी, उससे महत्तत्त्व नामक पदार्थ उत्पन्न हुआ। ऋग १०/१२९/२। उसी प्रकार से श्वेताश्वतर में कहा गया है-एक बीज को लेकर ईश्वर बहुत रूप में परिणत कर देता है, अर्थात प्रकृति एक ही है, लेकिन ईश्वर उसको सूर्य चन्द्रादि विविध रूपों में बना देता है। श्वेता ६/२। उसी प्रकार से ऋग्वेद के अन्दर कहा है–दो सुन्दर पंखों वाले पक्षी हैं, वे एक प्रकृति रूपी वृक्ष पर बैठी हुई हैं। इन सब प्रमाणों के द्वारा ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनो की सत्ता सिद्ध होती है। जैसे कि संसार के जितने भी घट आदि पदार्थ हैं वे सब त्रिगुणात्मक हैं। इससे सिद्ध होता है कि कारण को भी त्रिगुणात्मक होना चाहिये। जैसा कि श्वेताश्वतर में कहा गया है–प्रकृति सतोगुण,

रजोगुण और तमोगुण वाली है एक है, जन्म नहीं लेती हैं और अपने जैसे बहुत सी प्रजाओं को उत्पन्न करती है। श्वेता ४/५। जैसा कि ऋग्वेद में भी कहा गया है–सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व प्रकृति बिल्कुल सूक्ष्मरूप में थी, उससे महत्तत्त्व नामक पदार्थ उत्पन्न हुआ। ऋग १/१२९/३। उसी प्रकार से बृहदारण्यक में भी कहा गया है–जगत् उत्पत्ति से पूर्व अव्यक्त रूप में था। उसी प्रकार से छान्दोग्य में कहा गया है–हे सोम्य! जगत् उत्पत्ति से पूर्व अभाव नहीं था, बल्कि प्रकृति सूक्ष्म रूप में विद्यमान थी। छान्दो ६/२/१। उसी प्रकार से गीता में भी कहा गया है–अभाव से भाव नहीं होता। गीता २/१६। इन सभी प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है कि उत्पत्ति से पूर्व कारण सत्तात्मक रूप में विद्यमान था। उससे जगतृ की उत्पत्ति हुई, अभाव से जगत् की उत्पत्ति नहीं होती है। यदि कार्य पदार्थ उत्पत्ति से पूर्व कारण में विद्यमान था तो फिर क्यों कहते हैं कि यह घड़ा उत्पन्न हुआ, यह कपड़ा उत्पन्न हुआ, उत्पन्न तो वह होता है जो पहले नहीं रहता है। यदि वस्त्र आदि उत्पत्ति पूर्व विद्यमान थे तो उनकी उत्पत्ति हुई ऐसा कहना गलत है। इस शंका का समाधान करते हुये कहते हैं कि भले ही कार्य पदार्थ कारण में विद्यमान रहता है, लेकिन जब तक कार्य पदार्थ प्रकट न हो जाय उससे व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकता है। जैसे कि जब तक घड़ा प्रकट न हो, उसमें पानी नहीं भरा जा सकता है। वैसे ही तिल में तैल पहले से विद्यमान रहता है, लेकिन जब तक पीड़न क्रिया के द्वारा तैल बाहर न निकल जाय तब तक प्रयोग नहीं हो सकता। अतः व्यवहार की दृष्टि से कहा जाता है कि पदार्थ उत्पन्न हो गया। परन्तु जो उत्पन्न हुआ वह कारण में सूक्ष्मरूप से विद्यमान था। इस कथन में कोई आपत्ति वाली बात नहीं है। सांख्य १/१२०। प्रकृति को प्रधान नाम से भी कहा जाता है–**प्र धीयते प्रधीयते प्रारभ्यते व्यक्तिरूपं यस्मात् तत्प्रधानम् उसी प्रकार से कार्यस्य वस्तुनो भवति प्रकृष्टिं धानमाधामात्रयो यस्मिन् तत् प्रधानम्** अर्थात् जिससे कार्य पदार्थ उत्पन्न होता है और जिसमें कार्य पदार्थ का धारण होता है, उसको प्रधान कहते हैं। जोघट आदि पदार्थों का धारण करे वह प्रधान है। इस प्रधान शब्द

से भी सिद्ध होता है कि प्रकृति ही जगत का मूल कारण है, उसी से सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति होती है। अभाव से भाव नहीं होता। सांख्य १/१२५। महतत्त्व, अहंकार, ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां आदि जो सूक्ष्म तत्त्व हैं ये सब कार्य पदार्थ कहलाते हैं। प्रकृति और पुरुष ये दो ऐसे तत्व हैं, जो किसी के कार्य नहीं हैं, किसी से उत्पन्न नहीं होते। अतः प्रकृति और पुरुष दोनों से भिन्न जितने भी पदार्थ हैं सब कार्य पदार्थ कहलाते हैं। आत्मा और परमात्मा ये पुरुष के दो भेद हैं। ब्रह्म सृष्टि की उत्पत्ति करता है। जीवात्मा उसका भोक्ता है। प्रकृति नित्य है, परन्तु प्रकृति और पुरुष ये कभी भी नष्ट नहीं होते। परन्तु घट आदि कार्य पदार्थ होने के कारण उत्पन्न होकर नष्ट हो जाते हैं। सांख्य १/१२९। जैसा कि श्वेताश्वतर में कहा गया है–वह ब्रह्म एक है, सभी पृथ्वी आदि भूतों में विद्यमान है, सभी प्राणियों का आधार है, और जीवात्मा के कर्मों का अध्यक्ष है, तथा जीवात्मा के अच्छे-बुरे कर्मों का साक्षी है, चेतन है, और रूप रसादि गुणों से रहित है, जो पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र आदि को नियन्त्रण में रखने वाला है, वह ब्रह्म एक प्रकृति को बहुत रूपों में परिणत कर लेता है। श्वेता ६/११-१२। उसी प्रकार से मुण्डक में भी कहा गया है–उसी प्रकृति से प्राण, मन सभी चक्षु आदि इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं तथा आकाश, वायु, अग्नि, जल और सम्पूर्ण विश्व को धारण करने वाली भी उत्पन्न होती है। मुण्डक २/१/३। इन सभी प्रमाणों से भी सिद्ध होता है कि प्रकृति ही सम्पूर्ण जगत् का उत्पत्ति कारण है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में आकाशगंगा, सौरमण्डल और असंख्य तारे विद्यमान हैं, अर्थात् सब जगत लोक-लोकान्तर विद्यमान हैं। इससे सिद्ध होता है कि उन लोकों का कारण मूलप्रकृति भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्यापक हैं। अर्थात् सतागुण, रजोगुण रूप प्रकृति कुछ भाग में हो ऐसी बात नहीं है, वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं। ब्रह्माण्ड की अपेक्षा से प्रकृति को व्यापक कहा जाता है, ईश्वर की अपेक्षा से नहीं। ईश्वर तो ब्रह्माण्ड के बाहर भी विद्यमान है। जैसा कि यजुर्वेद में कहा गया है–**एतावानस्य महिमाऽतोज्यायांश्च पुरुषः**। यजु. ३१/३। यह ब्रह्माण्ड ब्रह्म के बड़प्पन को बता रहा है, लेकिन ब्रह्म तो इसके बाहर भी विद्यमान है। इससे सिद्ध होता है कि मूलप्रकृति ब्रह्माण्ड की अपेक्षा से सब

जगह व्यापक हैं, लेकिन ब्रह्म की अपेक्षा से सीमित है। **सूक्ष्मविषयत्वञ्चालिङ्गपर्यवसानम्।** योग. १/४५। अर्थात् मूलप्रकृति में सूक्ष्मता की चरमसीमा है, उससे ज्यादा सूक्ष्म कोई नहीं है। उसी प्रकार से सांख्यदर्शन में कहा गया है-**सौक्ष्म्यात् तदनुपलब्धि।** सांख्य १/१०९। अर्थात् मूल प्रकृति और पुरुष अत्यन्त सूक्ष्म हैं, इसलिये नेत्र के द्वारा उनकी उपलब्धि सम्भव नहीं है अब प्रकृति के स्वरूप से सम्बन्धित सूत्र जो सांख्यदर्शन में कथिन हैं, प्रस्तुत किये जा रहे हैं। मूल प्रकृति और कार्य जगत् के मध्य साधर्म्य को बतलाया गया है। त्रिगुणत्व मूलप्रकृति और कार्य जगत् में भी देखा जाता है, सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण प्रकृति कहलाते हैं, तथा ये तीनों घट-घट आदि कार्य पदार्थों में भी देखे जाते हैं।

अचेतनत्व : प्रकृति और कार्य पदार्थों दोनों अचेतन होते हैं, जड़ होते हैं। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से युक्त जो प्रकृति है, उसमें इच्छा आदि नहीं है, ज्ञानशून्यता देखी जाती है। उसी प्रकार से कार्य पदार्थ सूर्य चन्द्रादि भी अचेतन होते हैं। इच्छा आदि चेतन तत्त्वों के धर्म नहीं पाये जाते हैं।

परार्थत्वम् : सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण रूप प्रकृति जीवात्मा के प्रयोजन को सिद्ध करने वाले हैं। उसी प्रकार से सूर्य चन्द्र आदि कार्य पदार्थ भी जीवात्मा के प्रयोजन को सिद्ध करने वाले हैं।

परिणम्यमानत्वम् : सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण जो प्रकृति है, उसमें परिणाम होता है। जिससे महत्तत्व आदि तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। परन्तु मूल तत्त्व सदा नित्य रूप में बना रहता है। उसी प्रकार से शरीर पेड़-पौधे आदि में भी उत्पत्ति, ह्रास आदि परिणाम देखे जाते हैं। धीरे-धीरे निरन्तर परिणाम के माध्यम से ह्रास होता रहता है, और एक दिन कार्य पदार्थ नष्ट भी हो जाते हैं। लेकिन मूल प्रकृति कभी भी नष्ट नही होती। यहीं प्रकृति और प्रकृति से उत्पन्न शरीर तथा घट-घट आदि पदार्थों में समानता है।

वेदान्त दर्शन में **रचनानुपपतेश्च नानुमानम्।**

वेदान्त २/२/१। सूत्र पढ़ा गया है। इस सूत्र में अनुमानम् शब्द आया

है, वह प्रकृति के लिये पठित है। अर्थात् जिसमें विकार होता है, उसको अनुमानम कहते हैं। जिस प्रकार से लोक के अन्दर देखा जाता है मिट्टी कुम्भकार के बिना स्वतन्त्र रूप से घड़े की उत्पत्ति नहीं करती, क्योंकि मिट्टी जड़ पदार्थ है। उसको जिस रूप में बनाना चाहेंगे बन सकती है। किन्तु वह अपने आप घड़े की उत्पत्ति नहीं कर सकती। उसी प्रकार से प्रकृति भी जड़ होने के कारण स्वतंत्र रूप से जगत की उत्पत्ति नहीं कर सकती है। जगत् की उत्पत्ति में ईश्वर निमित्त कारण होता है, प्रकृति उपादान कारण होती है। उपादान प्रकृति को लेकर ईश्वर सूर्य, चन्द्रादि विभिन्न पदार्थों की रचना करता है। इससे सिद्ध होता है कि प्रकृति स्वतंत्र रूप से जगत की रचना नहीं कर सकती है। **प्रवृत्तेश्च।** वेदान्त २/२/२। अर्थात् चेतन पदार्थों में स्वतंत्र रूप से प्रवृत्ति देखी जाती है। जैसे कि शिष्य अपने गुरू की सेवा के लिये प्रवृत्त होता है, नौकर स्वामी के लिये प्रवृत्त होता है, क्योंकि नौकर आदि चेतन हैं, उन्हें अपने कर्त्तव्य ज्ञात हैं। इसलिये स्वतंत्रता पूर्वक दूसरों की सेवा करते हैं। लेकिन प्रकृति जड़ होने के कारण अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य को नहीं जानती तथा स्वयं कार्य रूप में परिणत होने की क्षमता भी नहीं रखती। जैसे कि लकड़ी से स्वयं कुर्सी नहीं बन जाती, मिट्टी से स्वयं घड़ा नहीं बनता। उसी प्रकार से प्रकृति जड़ होने के कारण स्वयंजगत् रूप में परिणत नहीं हो सकती।

यदि कोई ऐसा कहे कि दूध अपने आप बछड़े के लिये प्रवृत्त होता है, तथा नदियों में स्वयं ही जल बहता रहता है। जैसे कि जल जड़ होने पर भी स्वयं प्रवृत्त हो सकता है, उसी प्रकार से प्रकृति जड़ होने पर भी जगत् रूप में परिणत हो सकती है। इस शंका का समाधान करते हुये कहते हैं, कि दूध की प्रवृत्ति चेतन गाय के अधीन है। अपने आप दूध प्रवृत्त नहीं होता। गाय की प्रेरणा से दूध बाहर निकलता है। उसी प्रकार से नदी के जल के विषय में बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है-**एतस्य वाऽक्षरस्य प्रशासने गार्गि! प्राच्योऽन्या नद्यः स्वन्दन्ते** अर्थात हे गार्गि! ये नदियां भी ईश्वर के अधीन बहती हैं। इससे सिद्ध होता है कि नदियों का बहना भी

चेतन ब्रह्म के अधीन है। जिस प्रकार से नदियां स्वयं बह नहीं सकती, उसी प्रकार से जड़ प्रकृति भी स्वयं जगत् की रचना नहीं कर सकती है। यदि कोई ऐसा कहे कि सृष्टि का उत्पन्न करना प्रकृति का स्वभाव है। इसलिये जड़ होने पर भी प्रकृति सृष्टि की उत्पत्ति कर देती है। तो ऐसा कहना ठीक नहीं है। क्योंकि सृष्टि को उत्पन्न करना यदि स्वभाव है, तो सृष्टि उत्पन्न हो जायेगी, लेकिन प्रलय नहीं हो जायेगी। अर्थात् सृष्टि सदा के लिये बनी रहेगी। जबकि संसार के अन्दर सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय दोनों देखी जाती है। इससे सिद्ध होता है कि जगत् को उत्पन्न करना प्रकृति का स्वभाव नहीं है। यदि कोई ऐसा कहे कि उत्पत्ति और प्रलय करना प्रकृति का स्वभाव है, तो ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जड़ पदार्थ में दो विपरीत धर्म स्वाभाविक नहीं हो सकते। जबकि संसार में उत्पत्ति और प्रलय दोनों देखे जाते हैं। इससे सिद्ध हो जाती है कि प्रकृति स्वतन्त्र रूप से जगत् की रचना नहीं कर सकती है। यदि कोई ऐसा कहे कि गाय के द्वारा खाई गई घास जड़ होने पर भी स्वयं ही दूध रूप में परिणत हो जाती है। उसी प्रकार से प्रकृति भी जड़ होने से भी जगत् रूप में परिणत हो सकती है। तो इस शंका का समाधान करते हुये कहते हैं-कि जिस घास को गाय खाती है, उससे दूध बनता है, और उसी घास को बैल खाता है, उससे दूध बनता। इससे सिद्ध होता है कि जड़ घास दूध रूप में परिणत नहीं होता है। इससे भी सिद्ध होता है कि घास से दूध बनाना भी चेतन ईश्वर के अधीन है। इससे सिद्ध होता है कि जड़ प्रकृति स्वयं जगत् रूप में परिणत नही हो सकती है।

योगदर्शन में भी अनेक सूत्र हैं, जिनसे प्रकृति की सत्ता सिद्ध होती है। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीन अत्यन्त सूक्ष्म कण हैं, उनमें से सतोगुण प्रकाश धर्मवाला है, रजोगुण क्रिया धर्मवाला है और तमोगुण क्रियाहीनता धर्म वाला है। संसार के अन्दर जिन-जिन पदार्थों में प्रकाश विद्यमान है, उन सभी पदार्थों में सतोगुण की मात्रा अधिक है, इसलिये प्रकाश की उपलब्धि होती है, उसी प्रकार से घट-पदादि सभी पदार्थों में क्रिया देखी जाती है, वह क्रिया रजोगुण के कारण है। उसी प्रकार से जो क्रिया वाले पदार्थ हैं वे क्रिया

से रहित भी होते हैं। अर्थात् कभी उसमें क्रियाशीलता होती है, कभी उनमें क्रियाहीनता होती है। तमोगुण के सूक्ष्म कण के कारण ही उनमें क्रियाहीनता देखी जाती है, अर्थात् संसार के जितने भी घट-पट, पेड़-पौधे, वृक्ष, वनस्पति अर्थात जितने भी प्रकृति से उत्पन्न हुये हैं, उन सभी में सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण विद्यमान होते हैं। किसी पदार्थ में सतोगुण की मात्रा अधिक होती है, तथा तमोगुण, रजोगुण गौण होते हैं। तथा किसी में रजोगुण अधिक होती है और अन्य दो गौण होते हैं, वैसे ही अन्य किसी पदार्थ में तमोगुण की मात्रा अधिक होती है, और अन्य सतोगुण, रजोगुण गौण होती हैं। उस मूल प्रकृति से ही पांच स्थूल भूत, पांच सूक्ष्मभूत, ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां ये सब उत्पन्न होते हैं। भोग और अपवर्ग दिलाना प्रकृति के दो मुख्य प्रयोजन हैं। क्योंकि सभी प्राकृतिक पदार्थ प्रकृति से उत्पन्न होते हैं, और भोग के मुख्य आधार हैं। तथा वे ही शरीर आदि प्राकृतिक पदार्थ मोक्ष दिलाने वाले भी है, और उनके बिना मोक्ष सम्भव भी नहीं है। उस प्रकृति का दूसरा नाम दृश्य है। योग. २/१८।

मूल प्रकृति से महत्तत्व उत्पन्न होता है, महत्तत्व से अहंकार, अहंकार से पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, मन तथा पांच तन्मात्रायें उत्पन्न होते हैं। उन पांच तन्मात्राओं से पृथ्वी आदि पांच भूत उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार से प्रकृति तथा उनके विकारों का चार विभाग किया सकता है। पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, मन तथा पांच स्थूलभूत। इन सोलह तत्त्वों को विशेष कहते हैं। उसी प्रकार से पांच तन्मात्रा एक अहंकार इन छै तत्त्वों को अविशेष कहते हैं। तथा महत्तत्त्व को लिंगमात्र कहा जाता है। उसी प्रकार से मूल प्रकृति को अलिंग कहते हैं। मूल प्रकृति सदा नित्य रूप में बनी रहती है। प्रकृति से उत्पन्न सूर्य, चन्द्र आदि पदार्थ उत्पन्न होते रहते हैं, नष्ट होते रहते हैं। प्रकृति न तो उत्पन्न होती है और न नष्ट होती है, सदा एक स्थिति में बनी रहती है। योग. २/१९।

यदि सूक्ष्मता की अन्तिम सीमा देखी जाय तो सबसे अधिक सूक्ष्म तत्त्व सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण है। उनसे ज्यादा सूक्ष्म और कोई नहीं है।

वैसे तो पुरुष भी एक सूक्ष्म पदार्थ है, लेकिन प्राकृतिक पदार्थों में सबसे ज्यादा सूक्ष्म मूलप्रकृति है। योग.१/४५।

द्रष्ट का अर्थ है जीवात्मा और दृश्य का अर्थ है प्रकृति। जीवात्मा और प्रकृति का संयोग ही दुःख का कारण है। अर्थात् जब जीवात्मा का सम्बन्ध शरीरादि तत्त्वों के साथ हो जाता हैं, तो दुःख उत्पन्न होने लगता है, और शरीरादि के साथ सम्बन्ध समाप्त हो जाने पर दुःख की समाप्ति हो जाती है। योग. २/१७। मूलप्रकृति और मूलप्रकृति से उत्पन्न घट-पट, शरीर, मन आदि तत्त्व जीवात्मा के उपयोग के लिये हैं। जीवात्मा के साधन हैं, जीवात्मा के सहयोगी है, और जीवात्मा को सुख प्रदान करने वाले हैं। क्योंकि जीवात्मा प्रकृति के बिना किसी भी प्रयोजन की सिद्धि नहीं कर सकता। योग. २/२१। जिस पुरुष ने भोग अपवर्ग रूपी प्रयोजन को सिद्ध कर लिया, उसके लिये प्रकृति तथा प्राकृतिक पदार्थों का कोई महत्त्व नहीं है। परन्तु जो बद्ध जीवात्मा है, जिनको विवेक की प्राप्ति नहीं हुई है। उनके लिये प्रकृति एक साधन हैं, सुख प्रदान करनेवाली है। योग. २/२२। स्वशक्ति का तात्पर्य है–प्रकृति, और स्वामी शक्ति का तात्पर्य है–जीवात्मा। जीवात्मा और प्रकृति का संयोग स्वरूप के उपलब्धि में कारण है। यदि जीवात्मा का संयोग शरीर, मन आदि के साथ हो जाय तो वह अपने स्वरूप का भी साक्षात्कार कर सकता है, और प्रकृति के स्वरूप को भी प्राप्त कर सकता है। तथा प्रकृति और पुरुष का संयोग न होने पर दोनों में से किसी के स्वरूप को जाना नहीं जा सकता। योग. २/२३। महर्षि व्यास जी कहते हैं-कूटस्थ नित्यता और परिणामी नित्यता दो प्रकार की नित्यता देखी जाती है। आत्मा और परमात्मा ये दो ऐसे तत्त्व हैं जो कूटस्थ नित्य होते हैं, ये न कभी उत्पन्न होते हैं न विनष्ट होते हैं। पुरुष कभी किसी का उपादान कारण भी नहीं बनता, परन्तु प्रकृति एक ऐसा तत्त्व है जिसको परिणामी नित्य कहा जाता है। अर्थात् उससे महत्तत्व आदि पदार्थों की उत्पत्ति होती है। यदि महतत्व आदि पदार्थों की उत्पत्ति होती है, अर्थात् प्रकृति उपादान कारण है, जो प्रकृति के अन्दर परिणाम होना स्वाभाविक है। लेकिन

परिणाम होने पर भी मूल तत्त्व प्रकृति सदा नित्य रूप में बनी रहती है। मूल प्रकृति कभी नष्ट हो जाये ऐसा सम्भव नहीं है। इसलिये प्रकृति के अन्दर परिणामी नित्यता मानी जाती है। योग ४/३३, व्यास भाष्य। योगशास्त्र के एक सूत्र के अन्दर जीवात्मा के मोक्ष के विषय में बतलाया गया है। जीवात्मा का मोक्ष प्रकृति के बिना सम्भव नहीं है। प्रकृति जीवात्मा का साधन है। अपवर्ग की प्राप्ति रूप प्रयोजन के सिद्ध हो जाने पर प्रकृति अपने कारण में विलीन हो जाती है। तथा जीवात्मा ब्रह्म के स्वरूप में स्थित हो जाता है। अर्थात् जीवात्मा ब्रह्म के सम्पर्क में आकर ब्रह्म के समान गुणों को प्राप्त करके लम्बेकाल तक सभी दु:खों से पृथक् होकर आनन्द की प्राप्ति करता है। इसी को कैवल्य कहते हैं। योग ४/३४।

—x—

।। ओ३म् ओ३म् करो बेड़ा पार है।।

वानप्रस्था गुलाबी देवी आर्या के जीवनकाल में उनकी प्रेरणा से प्रकाशित साहित्य–

१. विश्वकल्याण निधि	२०५२-१९९५
२. विश्वकल्याण निधि (द्वितीय संस्करण)	२०५७-२०००
३. शतहस्त समाहार सहस्र हस्त संकिर	२०६०-२००४
४. वानप्रस्थ श्री सत्यनारायण आर्य (आर्य जगत् की दिव्य विभूति)	२०६४-२००७
५. विश्व कल्याण दिव्य भजनमाला (२००० पृष्ठ)	२०६५-२००९

आपकी पुण्य स्मृति में वानप्रस्थ सत्यनारायण आर्य द्वारा प्रकाशित साहित्य–

१. गृहोद्यान के दो माली	२०६६-२००९
२. आर्यों के नित्यकर्म	२०६६-२०१०
३. मानवता पर कलंक भ्रूणहत्या	२०६८-२०१०
४. निर्धनों के लिए ४०० फ्लैटों का प्रोजेक्ट	२०६८-२०१०

वानप्रस्था गुलाबी देवी आर्या दिव्य स्मृति ग्रन्थमाला :-

(विभिन्न विषयों पर आर्य जगत् के विद्वानों द्वारा ट्रेक्ट लेखन २०६८-२०११)

१. ईश्वर-जीव-प्रकृति	आचार्य ज्ञानेश्वर आर्य
२. गुलदस्ता	दोमादर लाल मूंधड़ा
३. जीवन का अन्तिम लक्ष्य–मोक्ष	स्वामी ऋतस्पति परिव्राजक
४. ईश्वर और जीव	डॉ. सुदर्शन देव आचार्य
५. प्रकृति	आचार्य दिलीप कुमार जिज्ञासु
६. वेद पढ़ें - आगे बढ़ें	डॉ. कमलनारायण वेदाचार्य
७. स्तुति प्रार्थना व उपासना का यथार्थ स्वरूप	स्वामी अमृतानन्द सरस्वती
८. आधुनिक भारत की सच्ची सन्त	आचार्य सुखदेव 'आर्य तपस्वी'
९. सुख-शान्ति के उपाय	स्वामी शान्तानन्द सरस्वती
१०. वैदिक सूक्त	आचार्य राहुलदेव शास्त्री
११. भागवत् कथा	आचार्य सोमदेव शास्त्री
१२. फूलझड़ियाँ	वानप्रस्थ सत्यनारायण आर्य

आपकी पुण्य स्मृति में प्रकाशित होने वाला साहित्य–

(क) वानप्रस्था गुलाबी देवी आर्या दिव्य स्मृति ग्रन्थमाला में अन्य कई ट्रेक्ट

(ख) भारत की सच्ची सन्त आदर्श नारी वानप्रस्था गुलाबी देवीजी की जीवन-यात्रा

।। ओ३म्।।

आर्य समाज के दस नियम

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।